आखर हिंदी पत्रिका ; e-ISSN-2583-0597 खंड 3/अंक 3/जून 2023
Received: 09/06/2023; Accepted: 14/06/2023; Published: 24/06/2023

एक कण्ठ विषपायी: आज भी पितृसत्तात्मक समाज और परंपराओं में जकड़ी नारी

केसरबेन राजपुरोहित
अतिथि व्याख्याता
कालीकट विश्वविद्यालय
मो. 9207433926
ई मेल – kesarclt@gmail.com

केसरबेन राजपुरोहित, **एक कण्ठ विषपायी: आज भी पितृसत्तात्मक समाज और परंपराओं में जकड़ी नारी**, आखर हिंदी पत्रिका, खंड 3/अंक 3/जून 2023,(315-319)

सदा से सुनते आ रहे है कि जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता वास करते है। वेदों में तो नारी को नारायणी कहा गया है। मनु ने अपनी स्मृति में स्त्रियों के लिए आदर व्यक्त करते हुए कहा-

"उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता। सहस्त्रं तु पितृन माता गौरवेणातिरिच्छयते।"

अर्थात् दस उपाध्याय के बराबर एक आचार्य होता है। सौ आचार्यो के बराबर एक पिता होता है और हजारों पिताओं से भी एक माता का गौरव बड़ा होता हैं।[1]

यह सब सुनकर-पढ़कर तो लगता है वाकई नारी को कितना महान बताया गया है। लेकिन क्या वाकई में उसे महान समझा भी जाता है? महान तो छोडिए क्या उसकी अपनी अस्मिता का सम्मान भी किया जाता है? एक तरफ नारी की महानता के गुणगान करने की बात की जाती है, उसे स्वर्ग की सीढ़ी तक बताया जाता है वही कौटिल्य ने लिखा है- "नारियाँ संतान उत्पन्न करने के लिए होती है। मौर्योत्तर युग के शास्त्रकारों की दृष्टि में नारी के लिए पतिव्रत्य ही परम धर्म है, जिसका पालन करने से वह उस स्वर्गलोक को प्राप्त करने में समर्थ होती है जिसे महर्षि तथा पवित्र आत्माएँ ही प्राप्त कर सकती है।"[2] यह कैसा विरोधाभास है? एक तरफ तो स्वर्ग की सीढ़ी ही नारी को बताया जाता है, दूसरी तरफ कहा जाता है जो पतिव्रता है वही स्वर्गलोक जा सकती है। पतिव्रता नारी की व्याख्या भी तो इस पितृसत्तात्मक समाज ने ही अपने कायदे-कानून के अनुसार दी है जिससे उनका दबदबा सदा बना रहे, नारी खुद को महान तो समझे लेकिन भूलकर भी महान बनने की कोशिश न करे, बनी रहे पैरों को सजानेवाली जूती ही।

वैदिक काल में नारियों को सम्मान दिया जाता था। कई विदुषी नारियों के उदाहरण भी मिलते है। नारी को स्वयंवर का भी अधिकार था। समय के साथ नारी कुप्रथाओं की बली चढ़ने लगी। विवाह के समय दिए जाने वाले स्त्रीधन को दहेजप्रथा बना दिया गया और यह समाज में रुतबा दिखाने का एक कारण ही बन गया। परंपराएँ ज्यों की त्यो चलती हैं। नारी के लिए उसमे कोई बदलाव नहीं है। हाँ, यह बात अलग है कि प्रथाओं का फरमा बदल के उन्हें और अधिक कठोर बना दिया जाता है। एक तरफ अधिकार दिए जाते है, दूसरी तरफ उत्पीडन भी बढ़ा दिया जाता है। कई प्रलोभन देकर मजबूर औरत का फायदा उठाने की कोशिश की जाती है। यह कोई नई बातें नहीं है। यह बात अलग है कि देखकर भी अनदेखा करने की समाज की आदत है।

भारतीय सामाजिक परिवेश में दुष्यंत कुमार जी ने शिव-सती प्रसंग को आधार बनाकर 'एक कण्ठ विषपायी' काव्य-नाटिका में वर्तमान समाज में प्रासंगिक प्रसंगों को बड़ी ही बेबाकी से उठाया हैं। सती शिव को प्राप्त करने के लिए कठोर तपस्या करती है। इससे प्रसन्न होकर शिव उन्हें वरदान देते हैं। समस्त देवलोक भी खुश है। लेकिन दक्ष, सती के पिता साधारण शिव के साथ अपनी पुत्री का विवाह नहीं करना चाहते। सती का विवाह शिव के साथ हो जाता है। शिव से विवाह करने की सती की ज़िद को दक्ष अपनी प्रतिष्ठा पर बड़ा आघात समझता है। वह विराट यज्ञ का आरंभ करता है जिसमे समस्त देवताओं सहित कैलाश के प्रत्येक प्रतिवेशी को आमंत्रित करता है लेकिन जान-बूझकर जमाता शिव को अपमानित करने के लिए आमंत्रित नहीं करता। दक्ष अहम में चूर होकर कहता है-"मेरी मर्यादाओं को अपमानित करके/मेरे घर की/लोक-प्रतिष्ठा की हत्या कर/मेरे ही रक्त ने सृजन का सुख पाया है।/उन दोनों ने केवल मेरी/बाह्य प्रतिष्ठा खण्डित की है/उनकी आत्म-प्रतिष्ठा का भ्रम तोड़ूँगा मैं।/हर अवसर/हर आयोजन पर/अपनी अवहेलना देखकर/शंकर का देवत्व स्वयं ही झुलस उठेगा।"[3]

ऐसी मनोवृति उसी पितृसत्तात्मक समाज की होती है जो स्त्री जाति को अपने अनुसार हाँकना चाहते है। स्त्री की तनिक भी स्वतंत्रता उससे बर्दाश्त नहीं होती। अगर स्त्री ने अपने मन से कोई निर्णय ले लिया तो यह पुरुष समाज के लिए नाकाबिले बर्दास्त होता है। मानसिक दोहन के क्रम में पुरुष समाज इसे अपनी इज्ज़त और मर्यादा से जोड लेता है। शिव-सती मिथक में इस घटना का होना यह भी बताता है कि पितृसत्तात्मक समाज की यह मनोवृति आज की नही बल्कि बहुत पुरानी है। जो आज इक्कीसवी सदी में भी अपने पैर पसारे हुए है। सती के संदर्भ में दक्ष की यह सोच भी उसी रुढ़ परंपरा को दर्शाती है जो पुरुष को ही श्रेष्ठ, बेहतर एवं स्त्री को हेय, निम्नतर मानती है।

आज वर्तमान समय में जो बलात्कार हो रहे है क्या वह भी एक पितृसत्तात्मक समाज की बिमार मानसिकता नहीं है? जो औरत को एक खिलौना समझ खेल लेते है। "बलात्कार का अर्थ एक महिला की जिंदा मौत होता है उसे जिन्दा सूली पर चढ़ाने जैसा होता है। वह जिस मानसिक क्लेश से गुजरती है इस भयानक दु:खद त्रासदी की कोई कीमत नहीं चुकाई जा सकती।"[4] परंपराओं के अनुसार कुछ भी गलत होता है तो कसूरवार औरत ही होती है। व्यंग्य बाणों से औरत का जीना दुभर कर दिया जाता है। आखिर थककर, हार मानकर किसी कुवे-बावडी में खुद को सोंप देती है। एक निर्दोष के साथ इंसाफ भी न कर सके तो क्या महानता इस पितृसत्तात्मक समाज की? सिर्फ पुरुषों के गुणगान करो, उन्हें सिर का ताज़ बनाए रखो और औरत को

अर्धांगिनी के नाम पर दासी बनाए रखना यही है 'नारी धर्म' या 'पत्नि धर्म'? एसिड अटैक जैसी घटना क्या कम शर्मनाक है? वह लडकी उस लडके से प्यार नहीं करती थी जो उसे पसंद करता था तो लडके ने भी ठान ली मेरी न हो सकी तो किसी और की भी नही हो सकती। यह क्या है? पितृसत्तात्मक समाज का ही तो वर्चस्व!

"मेरे हुक्म के अनुसार चलती रहोगी, संपूर्ण रूप से समर्पित होकर वफादारी के साथ मेरी सेवा करोगी तो 'सीता', 'सावित्री' और 'महारानी' कहलाओगी; सुख-सुविधाएँ, कपडे-गहने, धन-ऐश्वर्य, मान-सम्मान और प्रतिष्ठा पाओगी। मगर मुझसे अलग मेरे विरुद्ध आँखें उठाने की कोशिश भी करोगी तो कीड़े-मकोड़ों की तरह कुचल दी जाओगी। कोई तुम्हारी मदद के लिए आगे नहीं आयेगा"।[5] पुरुष की सोच आज इक्कीसवी सदी में भी कुछ इसी प्रकार की है। हाँ इसके अपवाद भी जरुर हो सकते है पर अधिकतर मानसिकता आज भी यही है।

दक्ष के यज्ञ में सती शिव जी के बीना कोई आदर स्वीकार नहीं करती। वह कहती है उसे आसन की जरुरत नहीं, वह तो साधारण जनता में भी खड़ी हो सकती है। लेकिन महादेव को सर्वश्रेष्ठ सम्मान देना है। इसे दक्ष अस्वीकार करता है। और अधिक क्रोधित हो जाता है। दक्ष को अपने अहंकार के अलावा कुछ नज़र नहीं आता। अपने अहमकपने में वह यह भी भूल जाता है कि सती न केवल शिव की पत्नी है बल्कि उसकी पुत्री भी है। विवश वारिणी दक्ष को समझाते हुए कहती है-"स्वामी!/पत्नी की मर्यादा/पति की मर्यादा से होती है।/और आपके इस आयोजन में/सभी देवताओं के बीच/कहीं शंकर का स्थान नहीं।/सती/अथवा कोई भी नारी/यह कैसे सह सकती है?" [6]

पति को छोटा बनाकर कोई भी कार्य अपने सम्मुख किया जाए तो कोई भी पत्नी वह स्वीकार नहीं करेगी। यही है नारी के परंपरागत संस्कार। सही भी है। लेकिन पुरुष को भी तो उसकी मर्यादाओं की रक्षा करनी होगी, उसके सम्मान को बनाए रखना होगा। स्त्री और पुरुष गाडी के दो पहियों के समान है। एक भी पहिए में गड़बड़ी हुई तो गाड़ी लड़खड़ा जाएगी। दोनों को एक-दूजे का मान-सम्मान करना है और मिलकर सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रयास भी करना है क्योंकि "पितृसत्ता केवल पुरुषाधिपत्य को ही नहीं, बल्कि वर्चस्ववाद को भी कायम रखती है। पितृ व्यवस्था के भीतर हर रिश्ता अधिकार एवं वर्चस्व से नियंत्रित रहता है जो शोषण पर निर्भर होता है।"[7]

जब किसी भी नये बदलाव की पहल की जाती है तो वह किसी को अच्छा नहीं लगता। "जब परंपरा का खण्डन कर/कोई नया मूल्य उठता है-/लोग उसे मिथ्या कहते हैं।"[8] कई कारण मिल जाते है परंपरा से चिपके रहने के। चाहे उस परंपरा को निभाते रहने का भाव-बोध कुछ समझ ही न आए। पीढ़ियों से चलते आ रहा है इसलिए हम भी निभा रहे है। ये क्या बात हुई? आगे सब कुए में कुदे इसलिए हम भी कुदेंगे। अरे! छलाँग लगाने से पहले कम से कम कारण भी तो जान लेते। सही-गलत, अच्छे-बुरे का भी कुछ तकाजा कर लेते। लेकिन इसकी क्या जरुरत? परिपाटी से जो चलते आ रहा है, वह चलने दो, बिना सोचे-समझे। बदलाव के चक्कर में कौन पंगा

ले इस समाज से, दुनिया से? तभी कहा है-"लाशें ढ़ोनेवाले अक्सर/खुद भी तो लाशें होते हैं।"[9] जो समय के साथ कदम मिलाकर नहीं चलते वह पीछे छूट ही जाते है इसमें कोई शक नहीं।

भूलना नहीं है कि "समय अपनी गति से अनवरत प्रवाहमान् रहता है। और जो भी कोई समय के साथ नहीं चलता समय उसे बड़ी बेरहमी से कूड़ेदान में फेंक देता है। अन्तत: समय के साथ ही चलनेवाले बचते हैं। और वही युग के प्रतिमान रचते हैं। परंपरा की लीक पर चलनेवाले पीछे छूट जाते हैं।"[10] यह भी सच है कि एक ही झटके में कोई भी बदलाव संभव नहीं।"हर परंपरा के मरने पर थोड़े दिन तक/सारा वातावरण शून्य से भर जाता है,/औ'परंपरा के चरणों में नतमस्तक/उसका हर पोषक/सहसा मन में डर जाता है।/अथवा आक्रामक या हिंसक हो उठता है।"[11] परिवर्तन संसार का नियम है। प्रकृति भी सदा परिवर्तित होती रहती है। विज्ञान भी समय के साथ अपने को हमेशा सुधारता रहता है। लेकिन जीवन में परिवर्तन विष के समान होता है। जिसे पीना या पचाना सरल नहीं होता।

समाज में नारी को उतने ही अधिकार दिए जाते है जिससे पुरुष सत्ता का वर्चस्व बना रहे और नारी उनके अधीन बनी रहे। पुरष जीवन में कोई नयापन या बदलाव नहीं चाहता। "उसे एक परंपरा चाहिए जी-हुज़ूरी की। उसे एक गाँधारी चाहिए जो जान-बूझकर न सिर्फ़ अंधी हो बल्कि गूँगी और बहरी भी।"[12]

निष्कर्ष: महिला सशक्तिकरण के नारे लगाने से, भाषण देने से या सिर्फ़ कानून बनाने से कोई बदलाव नहीं होगा। कई कानून बनाए है नारी के हित में। लेकिन उनमें भी कई तरह के विरोधाभास है। कहना गलत नहीं होगा कि आज इक्कीसवी सदी में नारी को एक प्रयोग की वस्तु समझा जाता है। आज कहा तक सुरक्षित है अकेली नारी? स्त्री-पुरुष के सहयोग से ही सामाजिक परिवर्तन संभव है। सामाजिक परिवर्तन की पहली शर्त शिक्षा है। आज वह सोच बदलने की आवश्यकता है कि 'अच्छे घर की बेटियाँ विश्वविद्यालय नहीं बल्कि ससुराल जाती है और अपने खानदान का नाम रोशन करती है।' अर्थात् अपना घर तो पराया और पराये घर को अपना बनाना पहली शर्त। अपने अस्तित्व का तो बोध होने की जरुरत ही नहीं। आज बेटी विश्वविद्यालय जाकर नाम रोशन करेगी, पिता-परिवार को गर्व महसूस करवायेगी और ससुराल में अपने मान के साथ सबका सम्मान भी बढ़ायेगी।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. डॉ. अंजू शुक्ला (2010). आधुनिक नारी एवं महिला सशक्तिकरण. अमन प्रकाशन (पृ. सं. 41)
2. डॉ. अंजू शुक्ला (2010). आधुनिक नारी एवं महिला सशक्तिकरण. अमन प्रकाशन (पृ. सं. 6)
3. दुष्यंत कुमार (2013). एक कण्ठ विषपायी. लोकभारती प्रकाशन (पृ. सं. 14-15)
4. एम.ए अंसारी (2007). महिला और मानवाधिकार. ज्योति प्रकाशन (पृ. सं. 270)

5. अरविंद जैन (2006). औरत होने की सज़ा. राजकमल प्रकाशन (पृ. सं. 15)
6. दुष्यंत कुमार (2013). एक कण्ठ विषपायी. लोकभारती प्रकाशन (पृ. सं. 31-32)
7. प्रमीला के. पी.(2015). स्त्री अध्ययन की बुनियाद. राजकमल प्रकाशन (पृ. सं. 41)
8. दुष्यंत कुमार (2013). एक कण्ठ विषपायी. लोकभारती प्रकाशन (पृ. सं. 87)
9. दुष्यंत कुमार (2013). एक कण्ठ विषपायी. लोकभारती प्रकाशन (पृ. सं. 124)
10. दुष्यंत कुमार (2013). एक कण्ठ विषपायी. लोकभारती प्रकाशन (पृ. सं. 132)
11. दुष्यंत कुमार (2013). एक कण्ठ विषपायी. लोकभारती प्रकाशन (पृ. सं. 122)
12. रेल राजभाषा, बिटिया विशेषांक 132 वां अंक, जनवरी-मार्च 2023. (पृ. सं. 10-11)

****